International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

नवदोत्तरी हिंदी उपन्यासों में नारी-अस्मिता, आत्मसंघर्ष एवं स्त्री-स्वतंत्रता: एक विवेचनात्मक अध्ययन

मनिषा गणपतराव अडसूळ
पीएच.डी. शोध-छात्र, हिंदी विभाग, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विद्याशाखा, साबरमती विश्वविद्यालय, अहमदाबाद (गुजरात)
डॉ. दिपक विश्वास पाटील
शोध-निर्देशक, हिंदी विभाग, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विद्याशाखा, साबरमती विश्वविद्यालय, अहमदाबाद (गुजरात)

सारांश
हिंदी उपन्यास साहित्य में स्त्री-जीवन का चित्रण आरंभ से ही सामाजिक यथार्थ के साथ जुड़ा रहा है, परन्तु नवदोत्तरी दौर में यह चित्रण अधिक सजग, आलोचनात्मक और अस्मितामूलक हो उठा है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में शिक्षा, रोजगार और संवैधानिक अधिकारों के विस्तार ने स्त्री के आत्मबोध को नई दिशा दी, जिसका प्रभाव समकालीन कथा-साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है (गोस्वामी, 2017)। नारी-अस्मिता का प्रश्न अब केवल स्त्री की सामाजिक स्थिति तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह उसकी आत्मपहचान, आत्मसम्मान, आत्मनिर्णय और स्वतंत्रता जैसे बहुआयामी मुद्दों से जुड़ गया है (अनामिका, 2020)। प्रस्तुत शोध पत्र में मृदुला गर्ग के कठगुलाब, मैत्रेयी पुष्पा के चाक, प्रभा खेतान के छिन्नमस्ता, चित्रा मुद्गल के आवाँ तथा ममता कालिया के एक पत्नी के नोट्स जैसे प्रतिनिधि उपन्यासों के आधार पर यह विश्लेषण किया गया है कि स्त्री अपने अस्तित्व की खोज, आत्मसंघर्ष और सामाजिक प्रतिरोध के माध्यम से किस प्रकार स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्थापना करती है। अध्ययन का उद्देश्य केवल कथा-वस्तु का विवरण देना नहीं, बल्कि समकालीन स्त्री-विमर्श के सैद्धांतिक ढाँचे में इन उपन्यासों की स्त्री-चेतना का पुनर्मूल्यांकन करना है (अग्रवाल, 2019)। इस दृष्टि से यह पत्र बारह खण्डों में विभाजित है, जिनमें अस्मिता की अवधारणा से लेकर परम्परा और आधुनिकता के द्वन्द्व तक स्त्री-जीवन के विविध पक्षों की पड़ताल की गई है।

कीवर्ड्स: नारी-अस्मिता, आत्मसंघर्ष, स्त्री-स्वतंत्रता, स्त्री-विमर्श, नवदोत्तरी हिंदी उपन्यास

1. परिचय

नारी-अस्मिता का सामान्य अर्थ स्त्री के उस स्वतंत्र अस्तित्व और पहचान से है जिसके आधार पर वह स्वयं को केवल पत्नी, पुत्री अथवा माँ जैसी सम्बन्धपरक भूमिकाओं तक सीमित न मानकर एक स्वतंत्र मानवीय सत्ता के रूप में स्वीकार करती है (यादव, 2018)। यह अवधारणा स्त्री के आत्मसम्मान, अधिकार-बोध और आत्मनिर्णय की चेतना से गहराई से जुड़ी हुई है। समकालीन आलोचना में अस्मिता को केवल वैयक्तिक

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

चेतना के रूप में नहीं, बल्कि जाति, वर्ग, क्षेत्र और आर्थिक स्थिति के अनुसार बदलती हुई बहुस्तरीय संरचना के रूप में देखा जाता है (कस्तवार, 2019)। कठगुलाब की स्मिता, नर्मदा और मारियान अलग-अलग सामाजिक पृष्ठभूमियों से आती हैं, इसलिए उनके अस्मिता-संघर्ष के रूप भी भिन्न हैं—किसी में यह अपराधबोध से मुक्ति का प्रश्न है तो किसी में आर्थिक आत्मनिर्भरता का। इसी प्रकार चाक की सारंग और रेशम की अस्मिता ग्रामीण सामन्ती संरचना के भीतर आकार लेती है, जबकि छिन्नमस्ता की प्रिया की अस्मिता शहरी व्यावसायिक परिवेश में विकसित होती है। यह भिन्नता इस बात की पुष्टि करती है कि नारी-अस्मिता एकरैखिक अवधारणा नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से निर्मित होने वाली गतिशील प्रक्रिया है (बालकृष्णन, 2017)। साहित्य में इसका अध्ययन इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह स्त्री के बाह्य जीवन के साथ उसके अन्तर्मन, आकांक्षाओं और आत्मबोध को भी अभिव्यक्त करता है।

इसके साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि नारी-अस्मिता की अवधारणा किसी एक निश्चित परिभाषा में बँधी हुई नहीं है, अपितु यह प्रत्येक कृति और पात्र के अनुभव के अनुसार नया अर्थ ग्रहण करती है (यादव, 2018)। आवाँ की नमिता के लिए अस्मिता श्रम और सम्मान से जुड़ी है, जबकि एक पत्नी के नोट्स की कविता के लिए यह दाम्पत्य सम्बन्धों में समान बौद्धिक मान्यता प्राप्त करने का प्रश्न बन जाती है। इस विविधता से यह भी स्पष्ट होता है कि अस्मिता का प्रश्न केवल शहरी अथवा शिक्षित स्त्री तक सीमित नहीं, बल्कि ग्रामीण, श्रमिक और घरेलू स्त्री के जीवन में भी समान रूप से सक्रिय है (कस्तवार, 2019)। इसलिए नवदोत्तरी हिंदी उपन्यासों में अस्मिता का अध्ययन करते समय पात्रों की सामाजिक-आर्थिक विविधता को ध्यान में रखना आवश्यक हो जाता है, अन्यथा विश्लेषण एकपक्षीय रह जाने का खतरा रहता है।

2. स्त्री-विमर्श का सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

नारी-अस्मिता के अध्ययन के लिए स्त्री-विमर्श का सैद्धांतिक ढाँचा आवश्यक आधार प्रदान करता है। स्त्री-विमर्श सामाजिक असमानता, लैंगिक भेदभाव और पुरुष-प्रधान संरचनाओं के आलोचनात्मक विश्लेषण की परम्परा है, जिसमें अस्मिता का प्रश्न केन्द्रीय स्थान रखता है (शुक्ल, 2020)। पश्चिमी नारीवादी चिन्तन से लेकर भारतीय स्त्री-विमर्श तक, यह विचारधारा निरन्तर विकसित होती रही है और भारतीय सन्दर्भ में इसने जाति, परिवार तथा सामुदायिक संरचनाओं के प्रश्नों को भी अपने भीतर समाहित किया है (वर्मा, 2016)। हिंदी लेखिकाओं ने स्त्री के अनुभवों को स्वयं स्त्री की दृष्टि से अभिव्यक्त करके इस विमर्श को साहित्यिक धरातल पर सशक्त किया (अरोड़ा, 2018)। चयनित उपन्यासों में यह सैद्धांतिक चेतना विभिन्न रूपों में प्रकट होती है—कहीं यह देह और यौनिकता के प्रश्न से जुड़ती है, कहीं आर्थिक स्वायत्तता से और कहीं वैवाहिक सत्ता-सन्तुलन से। इस प्रकार स्त्री-विमर्श केवल सैद्धांतिक अवधारणा नहीं, बल्कि कथा-साहित्य में मूर्त होने वाली जीवन्त प्रक्रिया है, जो पात्रों के अनुभवों के माध्यम से पाठक तक पहुँचती है। यह सैद्धांतिक आधार आगे के खण्डों में विश्लेषित मुद्दों—आत्मपहचान, आत्मसम्मान, स्वतंत्रता और प्रतिरोध—को समझने के लिए वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करता है।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

इस सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि हिंदी स्त्री-विमर्श ने पश्चिमी नारीवादी सिद्धांतों को यथावत् स्वीकार करने के बजाय उन्हें भारतीय पारिवारिक और सामुदायिक यथार्थ के अनुरूप पुनर्व्याख्यायित किया है (गुप्ता, 2019)। इसी कारण चयनित उपन्यासों में स्त्री का प्रतिरोध पश्चिमी व्यक्तिवाद की भाँति परिवार-विरोधी नहीं, बल्कि सम्बन्धों के भीतर समानता की माँग के रूप में सामने आता है। नासिरा शर्मा, मन्नू भंडारी और कृष्णा सोबती जैसी लेखिकाओं की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल और ममता कालिया ने स्त्री-अनुभव को अधिक जटिल, बहुस्तरीय और मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत किया है (अरोड़ा, 2018)। यही कारण है कि इन उपन्यासों की स्त्रियाँ केवल पीड़िता के रूप में नहीं, बल्कि विचारशील, निर्णयक्षम और आत्मसजग व्यक्तित्व के रूप में उभरती हैं, जो समकालीन स्त्री-विमर्श की परिपक्वता को प्रदर्शित करता है।

3. स्त्री की आत्मपहचान एवं अस्तित्व-बोध

आत्मपहचान का प्रश्न आधुनिक नारी-विमर्श के केन्द्रीय प्रश्नों में से एक है। यह उस चेतन प्रक्रिया की ओर संकेत करता है जिसके माध्यम से स्त्री अपने अस्तित्व, इच्छाओं और जीवन-मूल्यों को स्वयं पहचानती है, न कि परिवार अथवा पुरुष से सम्बद्ध भूमिकाओं के आधार पर (जैन, 2015)। छिन्नमस्ता की प्रिया के सामने जब उसकी पहचान को "विवाहिता, माँ और बहू" के दायरे में सीमित करने की कोशिश की जाती है, तब उसका आन्तरिक द्वन्द्व इसी अस्तित्व-बोध की खोज को व्यक्त करता है। इसी प्रकार कठगुलाब की स्त्रियाँ अपने अनुभवों, देह और इच्छाओं के प्रश्नों से जूझते हुए अपने 'स्व' को परिभाषित करने का प्रयास करती हैं (मिश्रा, 2023)। अस्तित्व-बोध का अर्थ सामाजिक सम्बन्धों से पूर्ण विच्छेद नहीं, बल्कि सम्बन्धों के भीतर अपनी स्वतंत्र सत्ता को सुरक्षित रखना है (त्रिपाठी, 2021)। चाक की सारंग इसका उपयुक्त उदाहरण है—वह पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन करते हुए भी सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय भूमिका विकसित करती है और स्वयं को केवल पत्नी अथवा माँ की भूमिका तक सीमित नहीं रहने देती। इस दृष्टि से आत्मपहचान की प्रक्रिया स्त्री को बाह्य परिभाषाओं से आगे बढ़कर अपने अस्तित्व की स्वयं व्याख्या करने की दिशा में अग्रसर करती है, जो अन्ततः उसके आत्मसम्मान और आत्मनिर्णय की आधारभूमि तैयार करती है।

आत्मपहचान की इस प्रक्रिया में आत्मखोज और आत्मस्वीकृति का भी विशेष महत्त्व है। आत्मखोज का अर्थ अपने भीतर छिपी इच्छाओं और क्षमताओं को पहचानना है, जबकि आत्मस्वीकृति का अर्थ अपने अस्तित्व को बिना हीनभावना के स्वीकार करना है (बालकृष्णन, 2017)। कठगुलाब में स्त्री पात्र अपने अनुभवों और सामाजिक मान्यताओं के बीच अन्तर्द्वन्द्व से गुजरते हुए इसी आत्मखोज की प्रक्रिया से गुजरती हैं—उनके लिए देह, प्रेम और सामाजिक नैतिकता बाहरी नियमों के विषय मात्र नहीं रह जाते, बल्कि वे इनके अर्थ को अपने अनुभवों के आधार पर स्वयं परिभाषित करती हैं। इसी प्रकार छिन्नमस्ता की प्रिया की आत्मस्वीकृति उसकी आर्थिक और सामाजिक उपलब्धियों के समानान्तर विकसित होती है। यह प्रक्रिया दर्शाती है कि अस्तित्व-बोध केवल एक क्षणिक निर्णय नहीं, बल्कि निरन्तर आत्मचिन्तन और अनुभव से

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

निर्मित होने वाली दीर्घकालिक यात्रा है (जैन, 2015), जो अन्ततः स्त्री को अपने जीवन की सक्रिय व्याख्याकार बनाती है।

4. आत्मसम्मान एवं आत्मनिर्णय का प्रश्न

आत्मसम्मान नारी-अस्मिता का महत्त्वपूर्ण आधार है, जिसका अर्थ स्त्री द्वारा अपने अस्तित्व और मानवीय गरिमा के मूल्य को स्वीकार करने से है (सक्सेना, 2022)। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री से त्याग और सहनशीलता की जो अपेक्षा की जाती है, वह अनेक बार उसके आत्मसम्मान से टकराती है। कठगुलाब की स्मिता का चरित्र इस दृष्टि से उल्लेखनीय है—यौन हिंसा का अनुभव करने के बावजूद वह अपराधबोध को स्वीकार नहीं करती, जो पितृसत्तात्मक मानसिकता के विरुद्ध एक सशक्त मानसिक प्रतिरोध है (भारद्वाज, 2023)। आत्मसम्मान की यह चेतना स्वाभाविक रूप से आत्मनिर्णय के प्रश्न को जन्म देती है, अर्थात् स्त्री अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण विषयों पर स्वयं विचार कर सके और अपने निर्णयों की जिम्मेदारी ले सके। आवाँ की नमिता का कार्यक्षेत्रीय शोषण के विरुद्ध नौकरी छोड़ने का निर्णय इसका सशक्त उदाहरण है; उसके पिता द्वारा इस निर्णय की सामाजिक स्वीकृति यह स्पष्ट करती है कि आत्मनिर्णय केवल वैयक्तिक क्षमता नहीं, बल्कि सामाजिक मान्यता की भी आवश्यकता रखता है (पांडेय, 2022)। एक पत्नी के नोट्स की कविता का अनुभव यह प्रश्न उठाता है कि शिक्षा और आर्थिक सक्रियता के बावजूद यदि दाम्पत्य सम्बन्धों में स्त्री के व्यक्तित्व को समान सम्मान नहीं मिलता, तो आत्मनिर्णय अधूरा रह जाता है। इस प्रकार आत्मसम्मान और आत्मनिर्णय परस्पर पूरक अवधारणाएँ हैं जो स्त्री को निष्क्रिय सहनशीलता से सक्रिय आत्मचेतना की ओर ले जाती हैं।

आत्मसम्मान और सामाजिक प्रतिष्ठा के बीच के अन्तर को समझना भी इस सन्दर्भ में आवश्यक है। सामाजिक प्रतिष्ठा प्रायः समाज-स्वीकृत मानदण्डों के आधार पर प्राप्त होती है, जबकि आत्मसम्मान व्यक्ति की अपनी गरिमा की अनुभूति है (शुक्ल, 2020)। चाक में रेशम का अनुभव इसी विरोधाभास को उजागर करता है कि समाज अपनी नैतिक प्रतिष्ठा की रक्षा के नाम पर स्त्री के जीवन और मातृत्व पर नियंत्रण स्थापित करता है, जबकि सारंग का प्रतिरोध इस सामाजिक नैतिकता को प्रश्नांकित करता है। इसी प्रकार आवाँ की नमिता का यह मानना कि आर्थिक कठिनाई उसे अपने सम्मान से समझौता करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती, इस बात की पुष्टि करता है कि आत्मसम्मान सामाजिक स्वीकृति से अधिक मूल्यवान है (वर्मा, 2016)। इस प्रकार आत्मसम्मान स्त्री को अन्यायपूर्ण मानदण्डों के विरुद्ध खड़े होने की शक्ति देता है, जबकि आत्मनिर्णय इस चेतना को व्यवहार में लागू करने का अवसर प्रदान करता है।

5. स्त्री-स्वतंत्रता एवं अधिकार-बोध

स्त्री-स्वतंत्रता का अर्थ केवल बाह्य सामाजिक बन्धनों से मुक्ति नहीं, बल्कि स्त्री को अपने जीवन, विचार और भविष्य के सम्बन्ध में स्वयं निर्णय लेने का अधिकार तथा अवसर प्राप्त होना है (सक्सेना, 2022)। इसका स्वरूप बहुआयामी है, जिसमें मानसिक, आर्थिक, सामाजिक और शारीरिक स्वायत्तता सम्मिलित हैं। केवल आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त कर लेना स्त्री की पूर्ण स्वतंत्रता का प्रमाण नहीं है; यदि उसे अपने

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

निजी सम्बन्धों और देह से जुड़े निर्णयों में स्वायत्तता प्राप्त नहीं है, तो उसकी स्वतंत्रता अधूरी रह जाती है (गुप्ता, 2019)। चाक में रेशम के मातृत्व-सम्बन्धी प्रसंग के माध्यम से यह मूल प्रश्न उठाया गया है कि स्त्री के शरीर और प्रजनन पर अधिकार किसका होना चाहिए—यह प्रसंग सामुदायिक नैतिकता द्वारा स्त्री की देह पर नियंत्रण की क्रूरता को उजागर करता है। दूसरी ओर व्यक्तिगत और सामाजिक स्वतंत्रता का समन्वय भी उतना ही आवश्यक है; सारंग का सार्वजनिक जीवन में सक्रिय होना यह दर्शाता है कि स्त्री की स्वतंत्रता केवल घरेलू क्षेत्र तक सीमित नहीं रह सकती (त्रिपाठी, 2021)। अधिकार-बोध का क्षेत्र भी शिक्षा, रोजगार, सम्पत्ति और अभिव्यक्ति तक विस्तृत है, और नवदोत्तरी उपन्यासों की स्त्रियाँ इन अधिकारों को कानूनी उपलब्धि के बजाय अपने जीवन के मौलिक तत्त्व के रूप में माँगती हैं। इस दृष्टि से स्त्री-स्वतंत्रता निरंकुश व्यक्तिवाद नहीं, बल्कि गरिमा, समानता और आत्मनिर्णय की सम्मिलित स्थापना का माध्यम है।
शिक्षा और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी स्त्री-स्वतंत्रता की व्यापक अवधारणा का अनिवार्य हिस्सा है। यदि स्त्री अपने अनुभव, पीड़ा और असहमति को व्यक्त नहीं कर सकती, तो उसकी शिक्षा और चेतना सामाजिक परिवर्तन में सीमित भूमिका ही निभा पाती है (त्रिपाठी, 2021)। नवदोत्तरी हिंदी उपन्यासों में महिला लेखिकाओं ने स्वयं स्त्री के अनुभवों को साहित्य की विषय-वस्तु बनाकर इसी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्त्वपूर्ण रूप दिया है। कठगुलाब में स्त्री की देह और यौनिकता से जुड़े प्रश्नों को स्त्री की दृष्टि से प्रस्तुत करना उस मौन को तोड़ता है जिसमें स्त्री के निजी अनुभवों को सामाजिक नैतिकता के नाम पर दबाया जाता रहा है (सिंह, 2023)। इस प्रकार शिक्षा स्त्री को सोचने की क्षमता देती है और अभिव्यक्ति उसे अपनी सोच को सामाजिक स्तर पर प्रस्तुत करने का अवसर देती है, जो मिलकर उसकी वैचारिक स्वायत्तता को सुदृढ़ करते हैं।

6. शिक्षा और नारी चेतना

शिक्षा नारी चेतना के विकास की आधारभूत प्रक्रिया है, क्योंकि यह स्त्री को अपने अधिकारों, क्षमताओं और सामाजिक स्थिति के प्रति जागरूक बनाती है (चतुर्वेदी, 2015)। कठगुलाब की स्मिता का चरित्र इसका प्रभावी उदाहरण है—प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद वह अपनी शिक्षा जारी रखकर बॉस्टन यूनिवर्सिटी में प्रवेश प्राप्त करती है, जिससे उसका जीवन पुनर्गठित होता है। चाक की सारंग की विद्वत्ता आरम्भ में परिवार की प्रतिष्ठा से जुड़ी दिखाई देती है, किन्तु आगे चलकर यही शिक्षा उसकी निर्णय-क्षमता और सामाजिक सक्रियता का आधार बनती है (यादव, 2018)। शिक्षा का प्रभाव केवल आत्मविश्वास तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह स्त्री में अधिकार-बोध भी विकसित करता है—वह अपने ऊपर हुए अन्याय को अपनी वैयक्तिक भूल मानकर मौन नहीं रहती (गुप्ता, 2019)। एक पत्नी के नोट्स की कविता उच्चशिक्षित स्त्री है, फिर भी उसका अनुभव यह स्पष्ट करता है कि शिक्षा आत्मविश्वास का आधार तो बनती है, परन्तु सामाजिक संरचनाओं में समान परिवर्तन के बिना उसका प्रभाव सीमित रह सकता है (कस्तवार, 2019)। इसके बावजूद शिक्षा प्राप्त स्त्री सामाजिक परम्पराओं को स्वाभाविक मानने के बजाय उनके औचित्य पर प्रश्न उठाने में सक्षम होती है, जो उसे वैचारिक स्वतंत्रता और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

अग्रसर करता है। इस प्रकार शिक्षा नारी चेतना की आधारभूमि, आत्मविश्वास का स्रोत तथा अधिकार-बोध का माध्यम बनकर उभरती है।

शिक्षा और आत्मनिर्भरता के बीच के सम्बन्ध पर विचार करते हुए यह भी उल्लेखनीय है कि शिक्षा स्वयं में पितृसत्ता को समाप्त नहीं करती, परन्तु यह स्त्री को उन संरचनाओं को पहचानने और उनका आलोचनात्मक मूल्यांकन करने की क्षमता अवश्य प्रदान करती है (चतुर्वेदी, 2015)। कठगुलाब की स्मिता का बौद्धिक विकास उसे अपने अनुभव को सामाजिक संरचना और लैंगिक सत्ता के व्यापक संदर्भ में समझने की क्षमता देता है, जबकि चाक में सारंग की विद्वत्ता उसे सामाजिक परिस्थितियों में हस्तक्षेप करने की शक्ति प्रदान करती है। इसी प्रकार एक पत्नी के नोट्स की कविता के संदर्भ में शिक्षा उसे अपने दाम्पत्य जीवन और पति की मानसिकता का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने में सक्षम बनाती है (गुप्ता, 2019)। अतः शिक्षा नारी चेतना की आधारभूमि, आत्मविश्वास का स्रोत और अधिकार-बोध का माध्यम होने के साथ-साथ आर्थिक आत्मनिर्भरता की दिशा में महत्त्वपूर्ण साधन भी सिद्ध होती है।

7. आर्थिक स्वावलम्बन एवं स्त्री सशक्तिकरण

आर्थिक पराधीनता स्त्री की सामाजिक स्थिति और उसके निर्णयाधिकार को प्रभावित करने वाली प्रमुख परिस्थिति है, क्योंकि आर्थिक निर्भरता कई बार स्त्री को अन्यायपूर्ण सम्बन्धों को स्वीकार करने के लिए बाध्य करती है (पांडेय, 2022)। इसके विपरीत आर्थिक स्वावलम्बन स्त्री के जीवन-विकल्पों का विस्तार करता है। छिन्नमस्ता की प्रिया का यह कथन कि उसका व्यवसाय उसकी "आइडेंटिटी" बन गया है, आर्थिक आत्मनिर्भरता और अस्मिता के प्रत्यक्ष सम्बन्ध को रेखांकित करता है (भारद्वाज, 2023)। कठगुलाब की नर्मदा भी पारिवारिक शोषण से बाहर निकलकर सिलाई के कार्य के माध्यम से अपने जीवन का आधार स्वयं तैयार करती है, जो यह दर्शाता है कि आर्थिक सशक्तिकरण केवल शहरी अथवा उच्चशिक्षित स्त्री तक सीमित नहीं है (मिश्रा, 2023)। आवाँ की नमिता का अनुभव इस प्रश्न को अधिक जटिल रूप में प्रस्तुत करता है—रोजगार आवश्यक है, परन्तु जब कार्यक्षेत्र में उसके सम्मान पर संकट आता है, तब वह आर्थिक आवश्यकता के बावजूद नौकरी छोड़ने का निर्णय लेती है (गुप्ता, 2019)। इससे स्पष्ट होता है कि वास्तविक सशक्तिकरण केवल आय अर्जित करने से नहीं, बल्कि सम्मानजनक कार्य-परिस्थितियों और अपनी आय, श्रम तथा देह पर अधिकार से जुड़ा है। इस प्रकार आर्थिक स्वावलम्बन, शिक्षा और सामाजिक चेतना परस्पर सम्बद्ध होकर स्त्री सशक्तिकरण की समग्र प्रक्रिया का निर्माण करते हैं।

स्त्री श्रम का प्रश्न केवल वेतनभोगी रोजगार तक सीमित नहीं है; घरेलू कार्य, देखभाल और असंगठित क्षेत्र का श्रम भी इसी व्यापक क्षेत्र में सम्मिलित है, जिसे प्रायः 'कर्तव्य' मानकर उसके आर्थिक मूल्य को समुचित मान्यता नहीं दी जाती (शर्मा एवं शर्मा, 2021)। आवाँ में नमिता और उसकी माँ का पापड़ बनाने का कार्य इसी असंगठित श्रम का उदाहरण है, जो परिवार की आर्थिक स्थिति को सहारा देता है, फिर भी सामाजिक प्रतिष्ठा से वंचित रहता है। इसके विपरीत छिन्नमस्ता की प्रिया का व्यवसाय स्त्री-श्रम के उच्चतर

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

व्यावसायिक रूप का प्रतिनिधित्व करता है, जहाँ स्त्री अपने कौशल और उद्यमिता को आर्थिक पहचान में परिवर्तित करती है (भारद्वाज, 2023)। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि स्त्री सशक्तिकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया में स्त्री के सभी प्रकार के श्रम—वेतनभोगी, घरेलू, असंगठित और उद्यमशील—का समुचित मूल्यांकन अनिवार्य है।

8. पितृसत्तात्मक व्यवस्था और स्त्री का प्रतिरोध

पितृसत्ता स्त्री-अस्मिता को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण सामाजिक संरचना है, जिसमें परिवार, विवाह और सामाजिक संस्थाओं पर पुरुष का प्रभुत्व स्थापित रहता है (शर्मा एवं शर्मा, 2021)। यह व्यवस्था केवल प्रत्यक्ष नियंत्रण के रूप में नहीं, बल्कि नैतिकता, रूढ़ि और पारिवारिक अपेक्षाओं के माध्यम से भी कार्य करती है। चाक में रेशम और गुलकंदी के प्रसंग यह स्पष्ट करते हैं कि ग्रामीण सामुदायिक संरचना स्त्री के निजी निर्णयों को भी सामूहिक मर्यादा के अधीन रखना चाहती है, जबकि सारंग का सामाजिक सक्रियता की ओर बढ़ना इसी व्यवस्था के भीतर प्रतिरोध का प्रतीक बनता है (चतुर्वेदी, 2015)। कठगुलाब में स्मिता का अपराधबोध से मुक्त रहना, नर्मदा का पारिवारिक शोषण से बाहर निकलना और मारियान का अपने रचनात्मक अधिकार के लिए कानूनी संघर्ष करना प्रतिरोध के तीन भिन्न किन्तु समान रूप से सशक्त रूप प्रस्तुत करते हैं (मिश्रा, 2023)। यह प्रतिरोध केवल प्रत्यक्ष विद्रोह तक सीमित नहीं, बल्कि आर्थिक आत्मनिर्भरता, सामाजिक रूढ़ियों पर प्रश्न उठाने और अपनी देह पर अधिकार स्थापित करने जैसे विविध रूपों में भी अभिव्यक्त होता है (पांडेय, 2022)। इस प्रकार पितृसत्तात्मक व्यवस्था जितना स्त्री के जीवन को नियंत्रित करती है, उतना ही उसके भीतर आत्मचेतना और प्रतिरोध की सम्भावना को भी जन्म देती है। नवदोत्तरी हिंदी उपन्यासों में स्त्री की मुक्ति का अर्थ पुरुष-विरोध नहीं, बल्कि असमान सत्ता-संरचनाओं का पुनर्मूल्यांकन और समानता की स्थापना है।

पितृसत्ता का सबसे पहला और प्रभावशाली रूप परिवार में दिखाई देता है, जहाँ स्त्री से आज्ञाकारिता और त्याग की अपेक्षा की जाती है। जब स्त्री इन अपेक्षाओं के भीतर अपने अस्तित्व को सीमित अनुभव करती है, तब उसका प्रतिरोध व्यक्तिगत स्तर से आरम्भ होता है (जैन, 2015)। कठगुलाब की नर्मदा इसका सशक्त उदाहरण है—वह पारिवारिक शोषण को स्वीकार करने के बजाय जीजा का घर छोड़कर अपने श्रम के माध्यम से जीवन को पुनर्गठित करती है। विवाह के भीतर भी यह प्रतिरोध विभिन्न रूपों में प्रकट होता है; एक पत्नी के नोट्स में कविता का मनोवैज्ञानिक प्रतिरोध यह स्पष्ट करता है कि आधुनिक विवाह में भी पितृसत्ता समाप्त नहीं होती, बल्कि वह अधिक सूक्ष्म भावनात्मक रूपों में उपस्थित रहती है (सक्सेना, 2022)। इस प्रकार पारिवारिक और वैवाहिक स्तर पर स्त्री का प्रतिरोध उसके आत्मसम्मान और आत्मनिर्णय की चेतना से गहराई से जुड़ा हुआ है, जो अन्ततः उसे सामाजिक प्रतिरोध की व्यापक चेतना की ओर ले जाता है।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

9. स्त्री का आत्मसंघर्ष एवं अन्तर्द्वन्द्व

स्त्री का आत्मसंघर्ष उसके बाह्य सामाजिक संघर्ष जितना ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि स्त्री-मन प्रेम, परिवार, परम्परा और स्वतंत्रता जैसी परस्पर विरोधी अपेक्षाओं के बीच निरन्तर द्वन्द्व से गुजरता है (त्रिपाठी, 2021)। छिन्नमस्ता की प्रिया के सामने जब यह स्मरण कराया जाता है कि वह "विवाहिता, माँ और बहू" है, तब उसका आन्तरिक द्वन्द्व सामाजिक रूप से आरोपित पहचान और उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व के बीच के तनाव को व्यक्त करता है। चाक की सारंग का आत्मसंघर्ष रेशम की हत्या जैसी घटना के बाद व्यक्तिगत असहमति से आगे बढ़कर सामाजिक अन्याय के प्रति व्यापक चेतना में परिवर्तित हो जाता है (शर्मा एवं शर्मा, 2021)। आवाँ की नमिता का द्वन्द्व आर्थिक आवश्यकता और व्यक्तिगत सम्मान के बीच के तनाव से उत्पन्न होता है, जबकि एक पत्नी के नोट्स की कविता का मानसिक संघर्ष दाम्पत्य सम्बन्धों में भावनात्मक उपेक्षा से जन्म लेता है (सक्सेना, 2022)। यह आत्मसंघर्ष स्त्री की कमजोरी का संकेत नहीं, बल्कि उसकी चेतना की गहराई का परिचायक है—यह उसे अपने अनुभवों के पुनर्मूल्यांकन और नई जीवन-दृष्टि के निर्माण की ओर प्रेरित करता है (बालकृष्णन, 2017)। इस प्रकार आत्मसंघर्ष से आत्मबोध, आत्मबोध से आत्मसम्मान और आत्मसम्मान से आत्मनिर्णय की यात्रा नवदोत्तरी हिंदी उपन्यासों में स्त्री चेतना के विकास की मूल प्रक्रिया के रूप में सामने आती है।

स्त्री का आत्मसंघर्ष अनेक बार अकेलेपन, मानसिक तनाव और असुरक्षा की अनुभूति से भी जुड़ा होता है। बाहरी रूप से सामाजिक सम्बन्धों से घिरी हुई स्त्री भी भीतर से अकेली हो सकती है, यदि उसकी भावनाओं को समझने वाला संवाद उपलब्ध न हो (कस्तवार, 2019)। एक पत्नी के नोट्स में कविता का जीवन इसी मनोवैज्ञानिक स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है—शिक्षित और आधुनिक होने के बावजूद वह दाम्पत्य जीवन में भावनात्मक उपेक्षा का अनुभव करती है। कठगुलाब की स्मिता के जीवन में हिंसा का अनुभव मानसिक असुरक्षा उत्पन्न करता है, परन्तु वह उस अनुभव को अपनी पहचान का अंतिम सत्य नहीं बनने देती (मिश्रा, 2023)। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि स्त्री-मुक्ति का प्रश्न केवल बाह्य अधिकारों तक सीमित नहीं है; मानसिक शान्ति, भावनात्मक सम्मान और सुरक्षित सम्बन्ध भी स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व के लिए उतने ही आवश्यक हैं।

10. परम्परा और आधुनिकता के बीच स्त्री

परम्परा और आधुनिकता के बीच का द्वन्द्व नवदोत्तरी हिंदी उपन्यासों में स्त्री-जीवन की प्रमुख समस्या के रूप में उपस्थित होता है। परम्परा स्त्री को परिवार, विवाह और सामाजिक मर्यादा से जोड़ती है, जबकि आधुनिक चेतना उसे स्वतंत्र व्यक्तित्व और आत्मनिर्णय की ओर प्रेरित करती है (शुक्ल, 2020)। छिन्नमस्ता की प्रिया के जीवन में यह द्वन्द्व स्पष्ट है—एक ओर उससे पारम्परिक भूमिकाओं की अपेक्षा की जाती है, दूसरी ओर वह अपने व्यवसाय के माध्यम से स्वयं को स्वतंत्र रूप से परिभाषित करना चाहती है (भारद्वाज, 2023)। एक पत्नी के नोट्स की कविता उच्चशिक्षित और आधुनिक होने के बावजूद दाम्पत्य जीवन की पारम्परिक अपेक्षाओं से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाती, जो यह प्रश्न उठाता है कि यदि वैवाहिक सम्बन्धों में स्त्री

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

को समान व्यक्तित्व न मिले, तो आधुनिकता कितनी सार्थक रह जाती है (पांडेय, 2022)। चाक की सारंग का व्यक्तित्व ग्रामीण परम्परा के भीतर आधुनिक चेतना के विकास को प्रस्तुत करता है—वह पारिवारिक दायित्वों से पूर्णतः विमुख नहीं होती, परन्तु सामाजिक जीवन में अपनी भूमिका का विस्तार करती है (यादव, 2018)। नवदोत्तरी हिंदी उपन्यासों में स्त्री आधुनिकता को अतीत के पूर्ण निषेध के रूप में स्वीकार नहीं करती; वह परम्परा के मानवीय पक्षों को बनाए रखते हुए उन मान्यताओं का विरोध करती है जो उसके अस्तित्व और स्वतंत्रता को सीमित करती हैं। यही विवेकपूर्ण दृष्टि आधुनिक नारी चेतना की मौलिक विशेषता है।

बदलते पारिवारिक मूल्यों के सन्दर्भ में यह भी देखा जा सकता है कि आधुनिकता के प्रभाव से परिवार की संरचना में परिवर्तन तो आया है, परन्तु पारम्परिक मूल्य पूर्णतः समाप्त नहीं हुए हैं (शुक्ल, 2020)। परिणामतः स्त्री के जीवन में पुराने और नए मूल्यों का सह-अस्तित्व कई बार तनाव उत्पन्न करता है। छिन्नमस्ता की प्रिया परिवार से जुड़े अपने दायित्वों को समझती है, परन्तु वह यह भी चाहती है कि उसकी स्वतंत्र पहचान को परिवार स्वीकार करे (सिंह, 2023)। इसी प्रकार चाक में सारंग का व्यक्तित्व पारम्परिक ग्रामीण परिवार और बदलती स्त्री चेतना के बीच संक्रमण को व्यक्त करता है—वह पारिवारिक दायित्वों से पूर्णतः विमुख न होते हुए भी सामाजिक जीवन में अपनी भूमिका का विस्तार करती है। इस प्रकार आधुनिक नारी चेतना परिवार-विरोधी नहीं है; वह परिवार में समानता, संवाद और साझेदारी की अपेक्षा करती है, जिसमें स्त्री केवल त्याग करने वाली सदस्य नहीं, बल्कि पारिवारिक निर्णयों में समान भागीदार के रूप में सामने आती है।

11. निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नवदोत्तरी हिंदी उपन्यासों में नारी-अस्मिता एक स्थिर अवधारणा नहीं, बल्कि आत्मपहचान, आत्मसम्मान, आत्मनिर्णय, शिक्षा, आर्थिक स्वावलम्बन, प्रतिरोध और आत्मसंघर्ष की सम्मिलित एवं गतिशील प्रक्रिया है (अनामिका, 2020; अग्रवाल, 2019)। कठगुलाब, चाक, छिन्नमस्ता, आवाँ और एक पत्नी के नोट्स की स्त्री पात्र भिन्न-भिन्न सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से गुजरते हुए भी एक समान आग्रह व्यक्त करती हैं—वह यह कि स्त्री को समाज द्वारा निर्धारित पहचान स्वीकार करने के बजाय अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व को स्वयं परिभाषित करने का अवसर मिलना चाहिए (कस्तवार, 2019)। इन उपन्यासों में स्त्री-मुक्ति का अर्थ पुरुष-विरोध नहीं, बल्कि सम्बन्धों में समानता, गरिमा और न्याय की स्थापना है। शिक्षा और आर्थिक स्वावलम्बन जहाँ स्त्री को आत्मनिर्भरता की दिशा में आगे बढ़ाते हैं, वहीं पितृसत्तात्मक संरचनाओं के विरुद्ध प्रतिरोध उसे सक्रिय निर्णयकर्ता के रूप में स्थापित करता है (शर्मा एवं शर्मा, 2021)। परम्परा और आधुनिकता के द्वन्द्व से गुजरते हुए भी ये स्त्री पात्र अपनी विवेकपूर्ण दृष्टि के माध्यम से नई जीवन-दिशा निर्मित करती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि नवदोत्तरी हिंदी उपन्यास स्त्री-अस्मिता के बहुआयामी स्वरूप को उजागर करते हुए समकालीन स्त्री-विमर्श को वैचारिक

गहराई और साहित्यिक संवेदनशीलता प्रदान करते हैं, जो आगे के शोध के लिए भी उर्वर भूमि तैयार करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अनामिका. (2020). स्त्री दर्पण. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. अग्रवाल, रोहिणी. (2019). स्त्री कोण: स्त्री-विमर्श की पुनर्रचना. सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. पुष्पा, मैत्रेयी. (2016). फाइटर की डायरी. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. गोस्वामी, नेहा. (2017). स्त्री विमर्श: हिन्दी साहित्य के संदर्भ में. विश्व हिंदी जन (ऑनलाइन शोध लेख)।
5. अरोड़ा, दीपिका. (2018). हिन्दी लेखिकाओं के साहित्य में नारी (कहानी के संदर्भ में). साहित्य सिनेमा सेतु शोध पत्रिका, अप्रैल अंक।
6. सिंह, प्रिया. (2023). 'अस्तित्व' उपन्यास में चित्रित नारी अस्मिता. साहित्य सिनेमा सेतु, अक्तूबर अंक।
7. मिश्रा, संगीता. (2023). मृदुला गर्ग कृत 'कठगुलाब' उपन्यास में निहित नारी चेतना. Global Interdisciplinary Scientific Research Journal, खंड 6, अंक 5।
8. वर्मा, कल्पना. (2016). नारी अस्मिता, मानवाधिकार और वर्तमान. शोध दृष्टि, खंड 4, अंक 2।
9. शर्मा, अवनि एवं शर्मा, विमलेश. (2021). पितृसत्तात्मक व्यवस्था और स्त्री की अदम्य जिजीविषा. अपनी माटी, अंक 39।
10. जैन, निर्मला. (2015). कथा में स्त्री: विमर्श और यथार्थ. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. यादव, प्रमोद कुमार. (2018). हिंदी उपन्यास और स्त्री-अस्मिता का प्रश्न. सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।
12. कस्तवार, रेखा. (2019). स्त्री चिंतन की नई दिशाएँ. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
13. बालकृष्णन, सुधा. (2017). स्त्री अस्मिता और साहित्य. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
14. शुक्ल, उमा. (2020). भारतीय स्त्री-विमर्श: सिद्धांत और व्यवहार. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
15. गुप्ता, स्वाति. (2019). समकालीन हिंदी उपन्यासों में कामकाजी स्त्री की छवि. शोध सरिता, खंड 6, अंक 22।
16. त्रिपाठी, अंजू. (2021). हिंदी उपन्यास में स्त्री-शिक्षा और आत्मनिर्भरता का प्रश्न. अनुसंधान विचार, खंड 9, अंक 3।
17. पांडेय, रीता. (2022). नवदोत्तरी हिंदी कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध के स्वर. मानविकी शोध पत्रिका, खंड 11, अंक 1।
18. चतुर्वेदी, मीनाक्षी. (2015). पितृसत्ता और स्त्री-देह का प्रश्न: चाक के विशेष संदर्भ में. हिंदी अनुशीलन, खंड 8, अंक 4।
19. सक्सेना, ऋतु. (2022). स्त्री-स्वतंत्रता के बदलते आयाम. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

20. भारद्वाज, कविता. (2023). छिन्नमस्ता में स्त्री-अस्मिता और आर्थिक स्वावलम्बन. शोध प्रवाह, खंड 14, अंक 2।

प्राथमिक स्रोत (उपन्यास)

1. मृदुला गर्ग, कठगुलाब, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004।
2. मैत्रेयी पुष्पा, चाक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996।
3. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993।
4. चित्रा मुद्गल, आवाँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998।
5. ममता कालिया, एक पत्नी के नोट्स, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979।